
इकाई 11: हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य विधाएँ : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 दृश्य विधा का विशिष्ट स्वरूप
- 11.3 एकांकी तथा अन्य दृश्य विधाओं का संरचनागत वैशिष्ट्य
 - 11.3.1 कथानक
 - 11.3.2 पात्र
 - 11.3.3 संवाद तथा भाषा शैली
 - 11.3.4 परिवेश अथवा देशकाल
 - 11.3.5 अभिनेयता या मंचीयता
 - 11.3.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य
- 11.4 हिंदी एकांकी का विकास
- 11.5 एकांकी के भेद
- 11.6 रेडियो नाटक
 - 11.6.1 रेडियो नाटक और एकांकी
 - 11.6.2 रेडियो नाटक के प्रकार
- 11.7 कथा मंचन और कहानी का रंगमंच
- 11.8 नुक्कड़ नाटक
- 11.9 नाट्य-रूपांतर
- 11.10 सारांश
- 11.11 शब्दावली
- 11.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप के बारे में जान सकेंगे;
- एकांकी तथा अन्य साहित्यिक विधाओं के बीच अंतर कर सकेंगे;
- एकांकी के रचना शिल्प का विवेचन कर सकेंगे;
- एकांकी के तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- हिंदी एकांकी के विकास क्रम के विभिन्न चरणों के बारे में बता सकेंगे;
- रेडियो नाटक की विशेषताएँ समझा सकेंगे तथा एकांकी और रेडियो नाटक का संबंध पहचान सकेंगे;
- साहित्य की अन्य विधाओं के मंचन के विषय में जानकारी दे सकेंगे; तथा
- नुक्कड़ नाटक के विषय में बता सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में एकांकी नाटक के विषय में जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ आप अन्य दृश्य, श्रव्य माध्यमों और उनके लिए लेखन के बारे में पढ़ेंगे। इस खंड में आप तीन एकांकियों का अध्ययन करेंगे। इन एकांकियों को पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि एकांकी क्या है और उसकी क्या विशेषताएँ हैं? उसका जन्म कैसे हुआ? और हिंदी में उसकी शुरुआत कब हुई? इसके साथ ही हिंदी एकांकी के विकासक्रम से परिचय भी आपके लिए जरूरी है। इससे आप हिंदी एकांकी के विविध रूपों का समुचित मूल्यांकन कर सकेंगे। साथ ही, रेडियो नाटक, छोटे या बड़े पर्दे के लिए लिखी जाने वाली पटकथा तथा नुक्कड़ नाटक के विषय में बता सकेंगे। साथ ही अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में एकांकी की विशिष्टता से भी आपका परिचय कराया जाएगा। एकांकी वस्तुतः नाटक का ही एक रूप है। एक अंक का नाटक एकांकी कहलाता है। नाटक की रचना दुनिया भर के साहित्य में आरंभ से ही काफी लोकप्रिय रही है किंतु एकांकी अपेक्षाकृत नई विधा है। हिंदी में तीस के दशक में शुरु होकर लगभग तीन-चार दशकों तक एकांकी काफी लोकप्रिय विधा रही। तत्पश्चात् श्रव्यदृश्य माध्यमों के विस्तार और लोकप्रियता के बाद इसमें थोड़ा ठहराव आया और इनका स्थान नाटक के अन्य रूपों जैसे नुक्कड़ नाटक, रेडियो नाटक, टीवी नाटक आदि ने ले लिया।

11.2 दृश्य विधा का विशिष्ट स्वरूप

एकांकी नाटक का ही एक रूप है। अतः एकांकी की चर्चा करने से पहले नाटक के बारे में थोड़ी सी जानकारी अपेक्षित है। साहित्य के दो प्रकार होते हैं, एक वह जिसे पढ़ा या सुना जा सकता है और दूसरा वह जिसे देखा जा सकता है। पहले प्रकार के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि आते हैं और दूसरे के अंतर्गत नाटक आता है। इस तरह साहित्य का वह रूप जिसे हम पढ़ भी सकते हैं और अपनी आँखों से देख भी सकते हैं, नाटक कहलाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इसे कैसे दिखाया जा सकता है? उत्तर होगा इसे अभिनय के माध्यम से देखा जा सकता है। अभिनय कौन करता है? उत्तर होगा अभिनेता। अभिनेता विभिन्न पात्रों का अभिनय करके नाटक की कथा को दृश्य रूप प्रदान करते हैं। इस तरह यहाँ कथा का वर्णन नहीं किया जाता, बल्कि उसे दृश्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अभिनेता पात्रों के रूप का अनुकरण करते हैं। इसीलिए नाटक को 'रूपक' भी कहा जाता है। पात्रों का यह अनुकरण, बाह्य तथा आंतरिक दोनों स्तरों पर किया जाता है। अर्थात् अभिनेता पात्रों के अनुरूप वेशभूषा, आचरण, हाव-भाव तथा भाषा का व्यवहार करते हैं और कथा को घटित होता हुआ दिखाते हैं। यह अभिनय जिस स्थल पर होता है उसे रंगमंच कहते हैं और इसे देखने वाले नाटक के दर्शक या प्रेक्षक कहलाते हैं। आपने कोई नाटक देखा होगा; रामलीला या रासलीला देखी होगी या अन्य किसी तरह का अभिनय अवश्य देखा होगा। क्या आपने कभी गौर किया है कि नाटक की क्या विशेषता होती है? आपने कहानी या उपन्यास पढ़े होंगे, नाटक भी पढ़े होंगे, कहानी सुनी होगी, क्या आपने ध्यान दिया कि जो कहानी आपने सुनी और जो नाटक आपने देखा उसमें कोई अन्तर है। आपने गौर किया है कि आप कहानी पढ़ते या सुनते हैं और नाटक देखते हैं। नाटक को कोई कहता या सुनता नहीं बल्कि अभिनेता प्रत्यक्ष रूप में इसे प्रस्तुत करते हैं। इस तरह यह दृश्य माध्यम है। यहाँ घटना का वर्णन नहीं होता, हम उसे घटित होते देखते हैं। नाटक में कार्य-व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है: पात्रों के बीच वार्तालाप द्वारा और उनके आचरण या कार्यों द्वारा। लेखक की रचना को अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। किंतु उनके अलावा बहुत

लोग नाट्य प्रस्तुति में सक्रिय भाग लेते हैं इनमें प्रमुख हैं: नाटक का/की निर्देशक, रंग-सज्जाकार, प्रकाश-व्यवस्थाकार, संगीत-वाद्य की व्यवस्था करने वाले आदि। नाटक की कथावस्तु कई अंकों में विभाजित होती है और अंक कई दृश्यों में विभाजित होता है।

बोध प्रश्न

1. नाटक में क्या खास बात होती है जो कहानी या उपन्यास में नहीं होती। प्रश्न के नीचे दिए स्थान पर अपना उत्तर लिखिए।

.....

.....

2. निम्नलिखित के लिए एक शब्द लिखिए :

- i) नाटक को मंच पर प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति।
- ii) वह स्थान जहाँ नाटक प्रस्तुत किया जाता है।
- iii) वह साहित्य-रूप जिसका आनंद देखकर लिया जा सके।
- iv) नाटक देखने वाले व्यक्ति।

11.3 एकांकी तथा अन्य दृश्य विधाओं का संरचनागत वैशिष्ट्य

नाटक की कथावस्तु कई अंकों और दृश्यों में विभाजित होती है। अंकों की संख्या अक्सर पाँच या तीन होती है। हालाँकि अंकों का कोई प्रतिबंध नहीं है। यह संख्या पाँच या तीन या कम या अधिक भी हो सकती है। अंकों को क्रमशः दृश्यों में विभाजित किया जाता है। दृश्यों की संख्या के बारे में भी कोई निश्चित नियम नहीं है। हाँ, दृश्यों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से मंच पर प्रस्तुति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। दृश्यों की योजना वस्तुतः नाटक की प्रस्तुति को दृष्टि में रख कर ही की जाती है। इसमें घटना के समय, स्थान, वातावरण आदि को प्रस्तुत किया जाता है। इस तरह नाटक का सारा कार्य-व्यापार अंकों और दृश्यों में सिमटा होता है।

आधुनिक युग में नाटक के भीतर से एक नई विधा का जन्म हुआ है। यह नई विधा एकांकी के नाम से विकसित हुई है। एकांकी का अर्थ है एक अंक का नाटक, एक से अधिक अंकों के नाटकों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि जब तीन या पाँच या दो या चार अंकों के नाटकों को एक समान ही समझा जाता है तो एक अंक के नाटक को एक नई विधा क्यों माना जाता है? आपका प्रश्न सही है। यदि केवल अंकों की संख्या के कारण ही एकांकी एक अलग विधा मानी जाए तब तो फिर अंकों के आधार पर कई तरह के नाटक हो सकते हैं। किंतु ऐसा नहीं है। कई अंकों के नाटक को कभी-कभी पूर्णकालिक नाटक भी कहते हैं। ऐसा अक्सर एकांकी का नाटक से भेद करने की दृष्टि से ही किया जाता है। यहाँ हम 'एकांकी' और 'नाटक' शब्दों का प्रयोग करेंगे। अतः 'नाटक' शब्द से हमारा तात्पर्य होगा एक से अधिक अंकों का नाटक। आधुनिक युग में एकांकी एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुआ है। इसका शिल्पगत स्वरूप नाटक से मिलता-जुलता होता है किंतु कलेवर कहानी की भाँति संक्षिप्त होता है। नाटक और एकांकी में न केवल आकार का ही अंतर होता है अपितु कथावस्तु, पात्र संख्या आदि का अंतर भी होता है। नाटक में जीवन का विस्तृत चित्रण होता है जबकि एकांकी उसके किसी एक खंड, स्थिति अथवा संवेदना को प्रस्तुत करता है। नाटक में मूल कथा के साथ-साथ गौण अथवा प्रासंगिक कथाएँ भी चल सकती हैं किंतु एकांकी में केवल एक मूल कथानक ही होता है। नाटक की कथावस्तु के विकास में शास्त्रीय ढंग की कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों

हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य
विधाएँ : स्वरूप और विकास

और संधियों का निर्वाह हो सकता है किंतु एकांकी में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है। यहाँ तो कथा आरंभ होकर तेजी से विकसित होती हुई चरम सीमा पर पहुँच जाती है। अतः इसमें प्रभाव की सघनता और तीव्रता अत्यावश्यक होती है। इसीलिए इसमें पात्रों की संख्या भी अधिक नहीं होती। कथा विकास में योग देने वाले प्रमुख पात्र होते हैं, गौण पात्र लगभग नहीं होते अथवा होते भी हैं तो बहुत कम। एकांकी में केवल एक दृश्य ही हो सकता है या एक से अधिक दृश्य भी बदले जा सकते हैं किंतु समय और स्थान की अधिक दूरी की गुंजाइश नहीं होती। बहुधा सारी घटना एक ही स्थान पर घटती है और यदि दृश्य बदलता भी है तो अक्सर स्थान परिवर्तन नहीं होता। नाटक में स्थान परिवर्तन किया जा सकता है। नाटक की घटना का विस्तार कभी-कभी काफी लंबे समय तक चलता है किंतु एकांकी में यह संभव नहीं। स्थान, कार्य और समय की एकता यहाँ आवश्यक है।

इसीलिए यह पारंपरिक लेखन पद्धति को अपनाने के लिए भी बाध्य नहीं है। इसमें जीवन के किसी एक पक्ष, किसी परिस्थिति विशेष, किसी महत्वपूर्ण घटना अथवा भाव को ऐसे ढंग से अभिव्यंजित किया जाता है कि प्रभाव की एकात्मकता और सघनता पाठक या प्रेक्षक के मन पर अमिट छाप छोड़ती है। इस तरह एकांकी की कथावस्तु इकहरी होती है कोई अप्रधान अथवा प्रासंगिक घटना या प्रसंग साथ नहीं चलता। प्रमुख कथा का विकास नाटकीय कौशल के साथ किया जाता है जिससे कुतूहल की सृष्टि होती है और कथा तेजी से चरम सीमा की ओर बढ़ती है। चरम सीमा पर पहुँचकर एकांकी का अंत हो जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है, “विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिल कर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता की भाँति फैलने की विशृंखलता नहीं है।”

इस तरह एकांकी के लेखन में एक खास तरह की टेकनीक अथवा शिल्पविधि निहित होती है। यह टेकनीक नाटकीय कौशल के साथ आकस्मिकता और कार्य व्यापार की शीघ्रता के माध्यम से कुतूहल, जिज्ञासा और विस्मय की सृष्टि करती है। परिस्थितियों के टकराव द्वारा द्वंद्व या संघर्ष की सृष्टि करती हुई उसे चरम सीमा तक पहुँचाती है। द्वंद्व या संघर्ष बड़ा ही प्रबल और सघन होता है जिससे पाठक या दर्शक के मन में चरम परिणति जानने की तीव्र इच्छा पैदा हो जाती है। यह द्वन्द्व या संघर्ष दो तरह का हो सकता है। दो पात्रों के बीच किसी बात को लेकर संघर्ष या फिर किसी पात्र के मन में परस्पर विरोधी विचारों का संघर्ष। चरम सीमा पर पहुँचकर इस कुतूहल या जिज्ञासा का समाधान होता है और एकांकी का अंत हो जाता है।

एकांकी तथा श्रव्य दृश्य विधाओं के तत्त्व :

यद्यपि श्रेष्ठ साहित्यिक कृति की रचना पूरी तरह से नियमों के बंधनों में बंध कर नहीं की जाती फिर भी साहित्यिक विधा विशेष की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो उसे अन्य विधाओं से अलग करती हैं तथा अपना एक निश्चित स्वरूप प्रदान करती हैं। एकांकी तथा अन्य दृश्य विधाओं का स्वरूप निम्नलिखित तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है :

1. कथानक
2. पात्र या चरित्र-चित्रण,
3. संरचना-शिल्प-संवाद तथा भाषा-शैली,
4. देशकाल अथवा परिवेश,
5. अभिनेयता,
6. उद्देश्य या प्रतिपाद्य।

11.3.1 कथानक

एकांकी के घटना विधान को कथावस्तु या कथानक कहते हैं। कथानक का चयन जीवन के किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। कथा अतीत से संबंधित हो सकती है या वर्तमान से। अर्थात् लेखक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या समसामयिक विषय को ले सकता है, उदाहरण के लिए इस खंड में जो एकांकी आप पढ़ेंगे उनमें ‘दीपदान’ की कथा प्राचीन भारतीय इतिहास से ली गई है। एकांकी ‘और वह जा न सकी’ की कथा वर्तमान

सामाजिक जीवन से संबंधित हैं। वर्तमान अथवा समकालीन जीवन से ली गई कथा का विषय सामाजिक, राजनीतिक जीवन की समस्याओं से संबंधित हो सकता है या व्यक्ति और समाज के संघर्ष से संबंधित या मानवीय राग-विराग आदि से संबंधित। नुक्कड़ नाटक का कथानक वर्तमान से और आस-पास के जीवन से जुड़े प्रश्नों से संबंधित होता है। कथानक में जीवन का जितना सही प्रस्तुतीकरण होगा उतना ही वह सफल होगा। बड़े नाटकों में आधिकारिक (प्रमुख) कथा के साथ-साथ अनेक प्रासंगिक (गौण) कथा या कथाएँ भी चलती हैं किंतु एकांकी में केवल आधिकारिक कथा ही चलती है। एकांकी की कथावस्तु में इकहारापन होता है और कार्य-व्यापार तीव्रता से आगे बढ़कर अंत तक पहुँच जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एकांकी में कथा-प्रवाह उस निर्झर के सामान होता है जो किसी पहाड़ी से अकस्मात् फूटता है और कुछ दूर तक दिखाई पड़ने के बाद शीघ्र ही आँखों से ओझल हो जाता है।

कथानक का अर्थ है— घटनाओं अथवा कार्य-व्यापार की योजना। यह योजना इस तरह की जाती है कि कथा आरंभ होकर विकसित होती हुई अंत तक पहुँच जाए। इस तरह कथावस्तु के तीन चरण होते हैं—

1) आरंभ, 2) विकास, और 3) अंत।

कथानक का प्रारंभ किसी घटना के मार्मिक स्थल से होता है। फिर घटनाओं के घात-प्रतिघात से जिज्ञासा, विस्मय और कुतूहलपूर्ण संघर्ष की सृष्टि द्वारा कथानक का विकास किया जाता है और चरम सीमा पर पहुँच कर उसका अंत हो जाता है। घटनाओं के विकास में जिज्ञासा या कुतूहल की सृष्टि दो विरोधी परिस्थितियों या असंगत भावनाओं के द्वंद्व अथवा संघर्ष द्वारा की जाती है।

इसलिए कथानक का आरंभ अत्यंत सशक्त, आकर्षक और प्रभावी होना चाहिए जिससे शुरू से ही दर्शक के ध्यान को पूरी तरह पकड़ ले। कथा का विकास संघर्ष के माध्यम से होता है इसीलिए संघर्ष को एकांकी की आत्मा कहा जाता है। संघर्ष दो तरह का हो सकता है—बाहरी और आंतरिक। बाहरी संघर्ष पात्रों के बीच विषम स्थितियों के कारण उत्पन्न होता है। आंतरिक संघर्ष मानसिक होता है। इसे अंतर्द्वंद्व भी कहा जाता है। इसमें दो विरोधी भावों की टकराहट होती है। इसके चित्रण के लिए मानवीय मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ अपेक्षित है। भली-भाँति विकसित होने पर आंतरिक संघर्ष बहुत ही प्रभावपूर्ण होता है। यह अंतर्द्वंद्व विचार और भावना का हो सकता है, कर्तव्य और प्रेम का हो सकता है, नैतिक दायित्व और महत्वाकांक्षा का हो सकता है, परंपरा और प्रयोगधर्मिता का हो सकता है। संघर्ष चाहे आंतरिक हो या बाह्य, परिस्थितियों की टकराहट अनिवार्य है। संघर्ष से ही कथानक में जिज्ञासा, कुतूहल और आकस्मिकता की सृष्टि होती है और दर्शक चरम परिणति जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।

जैसे-जैसे संघर्ष तीखा और गाढ़ा होता जाता है, पाठक या दर्शक की जिज्ञासा बढ़ती जाती है और विरोधी भावनाओं या परिस्थितियों की टकराहट या द्वंद्व घना होता जाता है। संघर्ष और अंतर्द्वंद्व की समाप्ति अक्सर विरोधी स्थितियों में से किसी एक की जीत में होती है। उदाहरण के लिए, विष्णु प्रभाकर की एकांकी 'संस्कार और भावना' में माँ के संस्कारों पर भावना की विजय। संघर्ष की सघनता और समाप्ति का स्थल चरम सीमा (क्लाइमेक्स) कहलाता है। यहीं पर कथानक का अंत हो जाता है। यदि चरम सीमा पूर्णतया सक्षम और प्रभावपूर्ण है तो वहीं पर कथानक का अंत अनिवार्य है क्योंकि इसके बाद कथा को आगे बढ़ाना प्रभाव को कमजोर बना देता है। यदि एकांकी चरम सीमा पर समाप्त नहीं होता तो यह कथा विकास की कमी है। यदि संघर्ष एकांकी की आत्मा है तो संघर्ष कहीं न कहीं पराकाष्ठा पर पहुँचेगा ही। इसलिए श्रेष्ठ एकांकी चरम सीमा पर अवश्य पहुँचता है और चरम सीमा पर पहुँचना ही संघर्ष की परिणति है।

संकलन-त्रय : एकांकी या रेडियो नाटक में एक ही घटना, संवेदना या मनःस्थिति का चित्रण होता है अतः इसमें संकलन त्रय की अपेक्षा होती है। संकलन-त्रय का अर्थ है स्थान, कार्य और समय की एकता। कथा-विकास में स्थान, समय और कार्य की एकता के माध्यम से प्रभावान्विति उत्पन्न की जाती है। इन तीनों एकताओं के संकलन को संकलन-त्रय कहा जाता है। स्थान की एकता से तात्पर्य है नाटक में घटित होने वाली घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित हों। यदि घटनाएँ कई स्थलों पर घटित होगी तो रंगमंच पर दृश्य विधान बदलने की जरूरत हो सकती है इसके लिए समय और साधन दोनों ही जुटाने पड़ सकते हैं। समय की एकता से तात्पर्य है कि घटनाएँ एक ही समय में घटित हों। एकांकी में दृश्य अधिक हो सकते हैं किंतु उनमें समय का ज्यादा अंतराल नहीं होता। यह नहीं कि एक घटना आज घटे और दूसरी महीने भर बाद। इसी तरह कार्य की अन्विति अथवा एकता एकांकी के लिए जरूरी है। ऐसा कोई भी कार्य या घटना नहीं होनी चाहिए जो मूल कथ्य को उभारने में सहायक न हो। कथानक का आरंभ, मध्य और अंत इस ढंग से नियोजित होने चाहिए कि तीनों मिल कर एक इकाई की सृष्टि करें। यानी कथानक का अगला भाग पिछले भाग का प्रतिफलन होना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि कथा बँधे-बँधाए ढर्रे पर आगे बढ़े। कथानक में आकस्मिक मोड़ से वह रोचक और प्रभावपूर्ण बनती है। संकलन-त्रय के कई लाभ हैं। इससे एकांकी की प्रभावान्विति में वृद्धि होती है, मंचन सुविधाजनक होता है क्योंकि मंच सज्जा को ज्यादा बदलने में श्रम और समय नष्ट नहीं करना पड़ता।

11.3.2 पात्र

पात्र एकांकी का अनिवार्य अंग है क्योंकि कथानक का विकास पात्रों के माध्यम से होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि कथावस्तु की बनावट में पात्रों की अपरिहार्य भूमिका हो और पात्रों का चरित्र कथावस्तु के माध्यम से विकसित और प्रस्तुत हो। दूसरे शब्दों में कहें तो कथानक चरित्र का प्रतिफलन हो और चरित्र कार्य-व्यापार से विकसित हो। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि पात्र जीवन से जुड़े हों, उनके कार्यकलाप मानवीय जीवन की अभिव्यक्ति हों। वह किसी काल्पनिक मायावी दुनिया के न होकर वास्तविक मानवीय दुनिया के हों। उनके गुण, स्वभाव, कार्य आदि सहज मानवीय होने चाहिए और यदि उनके व्यक्तित्व या व्यवहार में कोई आकस्मिक परिवर्तन आता है तो वह भी कार्य-कारण संबंध पर आधारित होना चाहिए। उनकी मनःस्थिति परिस्थितियों से उत्पन्न होनी चाहिए, ऊपर से आरोपित नहीं। पात्रों के सहज चारित्रिक विकास के लिए यह नितांत आवश्यक है।

जहाँ तक पात्र चयन का सवाल है वे किसी भी वर्ग से हो सकते हैं। प्राचीन नाट्य लेखन में रूढ़ि थी कि प्रधान पात्र उच्च वर्ग का तथा कुलीन होना चाहिए। किंतु आधुनिक नाटक इस तरह की कोई रूढ़ि स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह रचना के माध्यम से जीवन की यथासंभव यथार्थ प्रस्तुति करना चाहता है। एकांकी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती।

सामान्यतः पात्र संख्या चार-पाँच से ज्यादा नहीं होती जिनमें से एक या दो प्रधान पात्र होते हैं, शेष गौण। नाटक में बहुधा प्रधान पात्र का विरोधी पात्र होता है जिसे प्रतिनायक कहा जाता है। एकांकी में प्रतिनायक का होना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि संघर्ष दो पात्रों के बीच ही हो। परिस्थितियों अथवा मनःस्थिति का द्वंद्व भी हो सकता है। इसी तरह हास्य-व्यंग्य समावेश के लिए किसी पात्र का होना भी एकांकी में जरूरी नहीं है। हास्य-व्यंग्य की सृष्टि प्रमुख या गौण पात्रों के माध्यम से अथवा परिस्थितियों के माध्यम से भी की जा सकती है।

पात्रों के चरित्र का विकास उनकी स्थिति, मनोविज्ञान, संस्कार और परिवेश के अनुकूल होना चाहिए। पात्र मानवीय जीवन के हों, ऐसे काल्पनिक आदर्श नहीं कि जीवन में असंभव लगे। यदि वे किसी आदर्श को स्थापित भी करें तो स्वाभाविक ढंग से।

11.3.3 संवाद तथा भाषा शैली

हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य
विधाएँ : स्वरूप और विकास

संवाद एकांकी का अपरिहार्य तत्त्व है जिसके बिना एकांकी की रचना हो ही नहीं सकती। हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है जिसमें सब कुछ घटित होते दिखाया जाता है। कोई विवरण नहीं दिया जाता है। पात्रों द्वारा कही गई बातों के माध्यम से ही कथा का घटना व्यापार चलता है और पात्रों का चरित्र विकसित और व्यक्त होता है। इस तरह संवाद नाटक की कसौटी बन जाता है। पात्र स्वयं जो कुछ कहता है उससे तो उसके चरित्र के बारे में पता चलता ही है अन्य पात्रों की बातचीत भी उसके व्यक्तित्व को प्रकाशित करती है। अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक को अपनी ओर से कुछ भी कहने की छूट होती है क्योंकि अन्य विधाएँ वर्णनात्मक भी हो सकती हैं। वहाँ लेखक जितनी बात जरूरी समझता है उतनी पात्रों के मुख से कहलाता है शेष का बयान खुद कर देता है। ऐसा करते समय वह चाहे जितना विस्तार से कह सकता है स्थिति, समस्या, वातावरण या पात्र विशेष के संबंध में टिप्पणी कर सकता है। किंतु नाटक में सब कुछ संवादों के माध्यम से ही व्यक्त होना चाहिए। दृश्यों के आरंभ में तथा बीच-बीच में दिए गए रंग-निर्देश (लेखक द्वारा दिए गए रंगमंच तथा अभिनय संबंधी संकेत) प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक होते हैं किंतु प्रमुख भूमिका संवादों की ही होती है। कथावस्तु का विकास उसके उतार-चढ़ाव और चरम सीमा की अभिव्यक्ति संवादों के माध्यम से होती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि संवाद प्रभावपूर्ण, रोचक और स्वाभाविक तो हों ही, मर्मस्पर्शी, संक्षिप्त और वाक्पटुतापूर्ण भी हों। यदि संवाद मर्मस्पर्शी होंगे तो उनका प्रभावपूर्ण होना स्वाभाविक ही है। इसी तरह वाक्पटुतापूर्ण होने से उनमें रोचकता उत्पन्न होगी। संक्षिप्त होना इसलिए जरूरी है कि बोलचाल की बात आमतौर पर बहुत लंबी नहीं होती किसी गंभीर विषय पर वैचारिक वार्तालाप भी भाषण या वक्तव्य की भाँति बहुत बड़ा नहीं होगा। एकांकी का आकार छोटा होने के कारण संक्षिप्तता और भी अधिक अपेक्षित है। यहाँ अधिक विवेचन, विश्लेषण की गुंजाइश नहीं। अतः गंभीर और महत्वपूर्ण बात को भी संक्षिप्त किंतु प्रभावपूर्ण ढंग से कहना जरूरी है। उपर्युक्त सभी गुणों के समावेश के बावजूद संवाद स्वाभाविक होने चाहिए। स्वाभाविकता का अर्थ है सहजता। यह सहजता कई स्तरों पर हो सकती है। पहली बात तो यह कि संवाद पात्र के स्वभाव, व्यक्तित्व, शिक्षा-दीक्षा, आयु और मनःस्थिति के अनुकूल हों। दूसरे स्तर पर स्वाभाविकता से तात्पर्य है वास्तविक जीवन से निकटता। जीवन में विविध परिस्थितियों में हम जैसे आचरण-व्यवहार करते और बोलते हैं वैसी ही प्रतीति नाटक में होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि दिन-प्रतिदिन के वार्तालाप को एकांकी में ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत कर दिया जाए। ऐसा करने से वह जिज्ञासा अथवा कुतूहल उत्पन्न नहीं हो सकेगा जो एकांकी के लिए नितांत अपेक्षित है। अतः लेखक को चुनना होता है कि कथ्य का कौन-सा अंश दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सकेगा और पात्रों के संवादों के माध्यम से पाठक या दर्शक को सर्वाधिक संप्रेषणीय हो सकेगा। इसके लिए संवादों में स्वाभाविकता के साथ-साथ वाक् चातुर्य, बातचीत की कुशलता अपेक्षित है। पात्र से केवल उतना ही कहलाया जाए जितना कथा के विकास और पात्र के चरित्रोद्घाटन या मनोभावों के उद्घाटन के लिए अपेक्षित हो। लंबे और विचार बोझिल भाषणों से सदैव बचना चाहिए क्योंकि उनसे रोचकता कम होगी और वे दर्शकों को प्रभावित भी नहीं कर सकेंगे। वार्तालाप का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य स्थिति विशेष में अनिवार्य प्रतीत होना चाहिए। बात को इतनी सहजता और स्पष्टता से कहलाया जाना चाहिए कि पाठक या दर्शक को तुरंत समझ में आए। रंगमंच पर नाटक की सफलता या असफलता का आधार उसके संवाद ही होते हैं।

संवादों के प्रकार : संवाद कई प्रकार के होते हैं। इनमें दो पात्रों के बीच बातचीत तथा एकालाप या स्वगत कथन अधिक प्रचलित हैं। स्वगत कथन में पात्र किसी अन्य पात्र से बात नहीं करता वरन् अपने आप से ही कहता है। इसके द्वारा पात्र की मनःस्थिति उद्घाटित की जाती है, उसके मन में चल रहे द्वंद्व को व्यक्त किया जाता है।

भाषा : जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, इसे संवाद की कसौटी कहना चाहिए। पहले हम कह चुके हैं कि संवादों के माध्यम से भाषा ही नाट्य कथावस्तु को दृश्य बनाती है। दृश्य माध्यम होने के कारण यहाँ भाषा को अधिकाधिक संप्रेषणीय होना चाहिए। लिखित भाषा और उच्चारित भाषा में प्रभाव का अंतर होता है। नाटक में भाषा का मौखिक रूप प्रधान होता है। दर्शक उसे मंच पर देखता-सुनता है। पात्रों द्वारा कही गई बात दर्शक को तुरंत संप्रेषित होनी चाहिए क्योंकि सोचने-विचारने का समय नहीं होता। अतः लेखक को मौखिक शब्द की प्रभाव क्षमता पर ध्यान केंद्रित करना होता है। यहीं आकर दृश्य माध्यम की भाषा पाठ्य माध्यम की भाषा से विशिष्ट हो जाती है। भाषा का प्रयोग पात्रों की मनःस्थिति, गुण, स्वभाव, संस्कार, सामाजिक स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। एकांकी, रेडियो नाटक अथवा नुक्कड़ नाटक का आकार छोटा होने के कारण भाषा में संप्रेषणीयता की माँग और अधिक बढ़ जाती है।

शैली : शैली का अर्थ है कथ्य को प्रस्तुत करने का ढंग। कथ्य को प्रस्तुत करने के ढंग पर दो चीजों का खास असर होता है। सर्वप्रथम तो एकांकीकार के अपने व्यक्तित्व का। हर लेखक का अपनी बात को प्रस्तुत करने का एक खास ढंग होता है जो उसका अपना होता है। दूसरे वह अपने कथानक के लिए जिस विषय को चुनता है वह भी अपनी शैली को निर्धारित करता है। इस तरह शैली के कई रूप हो सकते हैं जैसे :

- 1) व्यंग्यात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, हास्यपरक शैली, विश्लेषणात्मक शैली आदि। नाटक में लेखक की अपनी शैली सीधे प्रस्तुत न होकर पात्रों के मुख से सामने आती है। अतः व्यंग्य, विवेचन, विश्लेषण, तर्क आदि सभी संवाद के रूप में प्रस्तुत होते हैं।
- 2) पात्रों के मनोविज्ञान की प्रस्तुति के आधार पर मनोविश्लेषणपरक शैली या भावनात्मक शैली हो सकती है।
- 3) विषय की दृष्टि से गंभीर विवेचन की शैली या सहज बोलचाल की शैली हो सकती है।

अभिनेयता की दृष्टि से भाषा-शैली और संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक की भाषा का लिखित पक्ष जितना महत्वपूर्ण होता है उतना ही भाषा का मौखिक पक्ष। लिखित रूप में प्रभावपूर्ण होते हुए भी यदि भाषा तथा शैली दृश्य और उच्चारित रूप में स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण न लगी तो नाटककार का सारा उद्देश्य निष्फल रहेगा। उसमें बोलचाल की सहजता, स्वाभाविकता और प्रभाविष्णुता नितांत अपेक्षित है। लेखक ने यदि व्यंग्यात्मक या प्रतीकात्मक शैली अपनायी है तो यह व्यंग्य या प्रतीक दर्शक को सहज बोधगम्य होने चाहिए अन्यथा उसका अपेक्षित प्रभाव नहीं होगा। अतः संवाद पढ़ने में जितने प्रभावकारी और संप्रेषणीय हों, मंच पर प्रस्तुत होने पर भी उतने ही या उससे अधिक प्रभावकारी होने चाहिए, कम नहीं।

11.3.4 परिवेश अथवा देशकाल

कथानक जिस समय तथा स्थान से संबंधित हो उसके वातावरण की सृष्टि परिवेश की सृष्टि कहलाती है। पात्र जिस समय के हैं, जिस स्थान और जिस वर्ग के होते हैं उसका प्रभाव उनके रहन-सहन, वेशभूषा, भाषा, विचारों आदि पर दिखाया जाना चाहिए। यदि कथानक समसामयिक जीवन से संबद्ध है तो उसमें समसामयिक परिवेश होना चाहिए और यदि ऐतिहासिक है तो इतिहास का परिवेश। उदाहरण के लिए, हम पाठ्यक्रम में

निर्धारित एकांकियों तथा अन्य नाटकों को देखें तो 'दीपदान' ऐतिहासिक एकांकी है। अतः प्राचीन भारतीय जीवन, समय, राज्यव्यवस्था आदि का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। 'और वह जा न सकी' आधुनिक जीवन के मध्यवर्गीय परिवार को लेकर लिखा गया है। अतः भारतीय समाज के मध्य वर्ग के परिवार के रहन-सहन, आचार-व्यवहार, सोच-विचार आदि के परिवेश को प्रस्तुत करता है। नुक्कड़ नाटक राजनीतिक यथार्थ को असली रूप में उभारता है अतः उसमें छल-कपट अपराध की मानसिकता का परिवेश है। परिवेश से कथानक तथा पात्रों में विश्वसनीयता उत्पन्न होती है। परिवेश की सृष्टि जितनी वास्तविक और स्वाभाविक होगी नाटक उतना ही विश्वसनीय और सजीव होगा। जिस समय और स्थान को प्रस्तुत किया जा रहा है वह पाठक या दर्शक की कल्पना में सजीव हो उठना चाहिए।

देशकाल या परिवेश श्रव्य-दृश्य विधा के संपूर्ण कथा व्यापार में व्याप्त रहता है। कहानी, उपन्यास आदि वर्णनात्मक विधाओं में तो देशकाल या परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक अपनी ओर से टिप्पणी भी कर सकता है, विवरण भी दे सकता है किंतु नाट्य विधा में परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहता। इसकी सृष्टि वह दृश्य-विधान, रंग-सज्जा, पात्रों की वेशभूषा आदि के विषय में संकेत देकर तथा पात्रों की भाषा, विचार, रहन सहन के तौर-तरीके, बातचीत की शैली आदि के माध्यम से करता है। पूरी की पूरी नाट्य-प्रक्रिया मिलकर परिवेश की सृष्टि करती है। मंचन के समय निर्देशक को भी परिवेश का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। मंच-सज्जा, ध्वनि-प्रभाव, पात्रों के अभिनय आदि का भी परिवेश की सृष्टि में विशेष योगदान रहता है। परिवेश की सहज और स्वाभाविक सृष्टि के लिए आवश्यक है कि लेखक को समाज, संस्कृति, इतिहास, कला आदि की सूक्ष्म जानकारी हो। लेखक जीवन को जितनी सूक्ष्मता से देखेगा, उतनी ही सफलता से वह देशकाल की सृष्टि कर सकेगा। यदि वह इतिहास से अपना कथानक चुनता है तो उसे इतिहास के काल विशेष के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करके तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करना होगा। इतिहास का जो युग उसने लिया है उससे संबंधित यह जानकारी होनी चाहिए, उसमें लोग कैसे रहते थे, किस ढंग से जीवन यापन करते थे, मानवीय संबंधों का स्वरूप कैसा था, ज्ञान-विज्ञान के विकास की क्या स्थिति थी, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि का क्या रूप था, आर्थिक-सामाजिक संबंधों की स्थिति क्या थी। इन समस्त जानकारी के आधार पर ही वह अपने कथानक को सजीव, स्वाभाविक और विश्वसनीय बना सकता है। इसी तरह समसामयिक परिवेश की सृष्टि के लिए जीवन के विविध पक्षों की जानकारी आवश्यक है। कथानक यदि ग्रामीण जीवन का है या शहरी जीवन का है तो वहाँ के लोगों के रहन-सहन, आचार-विचार, मानवीय संबंधों के स्वरूप की जानकारी के आधार पर देशकाल की सृष्टि की जानी चाहिए।

11.3.5 अभिनेयता या मंचीयता

हम पहले कह चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है। उसे रंगमंच पर अभिनय द्वारा दृश्य बनाया जाता है और रेडियो पर आवाज और ध्वनि द्वारा और टेलीविज़न या सिनेमा के लिए स्टूडियो में अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह लेखक द्वारा लिख दिए जाने मात्र से पूरा या सफल नहीं हो जाता, मंच पर प्रस्तुत होकर पूर्ण होता है। अतः अभिनेयता नाटक का महत्वपूर्ण तत्त्व है। यदि कोई नाटक अथवा एकांकी सफलतापूर्वक अभिनीत नहीं हो सकता तो उसे नाटक न कह कर संवादात्मक कथा मात्र कहा जाएगा। केवल संवादों के रूप में प्रस्तुत कर देने मात्र से कोई रचना नाटक नहीं बन जाती। यह जरूरी होता है कि संवाद अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर स्थिति को दृश्य बनाने में सक्षम हों। नाटककार चूँकि अपनी ओर से कुछ नहीं कहता अतः कथानक में निहित द्वंद्व और उसकी चरम परिणति की अभिव्यक्ति को रंगमंचीय प्रदर्शन

द्वारा अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए अभिनेता नाटक के पात्रों का रूप धारण करके अभिनय करते हैं। अभिनय का अर्थ केवल संवाद बोल देना भर नहीं होता। अभिनेता अपने हाव-भाव, शारीरिक चेष्टाओं, वेशभूषा आदि द्वारा संवादों को सजीव बनाता है।

अभिनय कई तरह से किया जाता है : 1) मुँह से बोलकर, 2) शारीरिक चेष्टाओं द्वारा 3) हाव भाव की अभिव्यक्ति द्वारा 4) वेश-भूषा और अलंकरण द्वारा। अभिनेता जिस पात्र का अभिनय कर रहा है उसके संवादों को बोलना वाणी द्वारा अभिनय होता है। किंतु अभिनेता का उद्देश्य किसी संवाद को बोल देना भर नहीं होता। वह संवाद द्वारा पात्र की मनःस्थिति प्रस्तुत करता है। अतः अभिनेता अपनी मुख-मुद्रा और हाव-भाव द्वारा भी पात्र का अनुकरण करता है। वाणी, शरीर, हाव-भाव आदि सभी तरह के अभिनय का प्रभाव तभी पूरा होता है जब अभिनेता पात्र की वेशभूषा तथा आकार-प्रकार का भी अनुकरण करता है। इस तरह वेशभूषा तथा अलंकरण द्वारा अभिनेता-पात्र के रूप का अनुकरण करता है। अभिनय जितना सजीव और स्वाभाविक होगा उतना ही सफल नाट्य प्रदर्शन होगा। सफल अभिनय वह अवस्था है जब दर्शक यह भूल जाए कि वह मंच पर प्रदर्शन देख रहा है या घटना को वास्तविक रूप में घटित होते देख रहा है। मंचीयता की दृष्टि से नाट्य लेखक से कई प्रकार की अपेक्षाएँ की जाती हैं। इनमें कुछ तो बाह्य हैं और कुछ आंतरिक। बाह्य अपेक्षाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है रंग-निर्देश (रंग संकेत)। लेखक रंग-निर्देश द्वारा नाटक में घटना के समय, घटना स्थल की मंच-सज्जा, दृश्य परिवर्तन, पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान की सूचना, उनके रूपाकार, वेशभूषा, संवादों के बोलने के ढंग, लहजे आदि की सूचना देता है। यदि नाटक रेडियो के लिए लिखा हो तो ध्वनि संबंधी निर्देश और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। आंतरिक अपेक्षाएँ नाटक के वस्तु विधान, पात्र सृष्टि, भाषा और संवाद शिल्प में निहित होती हैं। नाटक जीवन की अनुकृति होता है। किंतु जीवन की घटनाओं को यथावत प्रस्तुत कर देने मात्र से नाट्य-सृजन पूरा नहीं हो जाता। उनको इस ढंग से प्रस्तुत किया जाना जरूरी होता है कि वे दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हों। अतः घटनाओं, स्थितियों और मनःस्थितियों को दृश्यात्मक परिप्रेक्ष्य में उभारना अपेक्षित होता है। दृश्य-विकास ऐसा न हो कि उसे मंच पर प्रस्तुत करना असंभव या अस्वाभाविक लगे। यदि एकांकी में एक ही दृश्य है फिर तो कोई दिक्कत नहीं, किंतु यदि दृश्यों की संख्या एक से अधिक हो तो दृश्य-परिवर्तन के अनुकूल मंच-सज्जा ऐसी हो जिसे आसानी से और कम समय में बदला जा सके। इसी दृष्टि से संकलन-त्रय की अपेक्षा की जाती है। संकलन-त्रय की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। संकलन-त्रय का मतलब है नाटक की कथा में स्थान, काल और कार्य की एकता, यानी एक घटना व्यापार एक स्थान पर एक समय में घटित हों। संकलन-त्रय होने पर एकांकी स्वाभाविक और प्रभावी रहेगा। इसी दृष्टि से बहुत से एकांकीकार एकांकी में दृश्य परिवर्तन को उपयुक्त नहीं समझते और एक ही दृश्य का एकांकी लिखते हैं। हालाँकि संकलन-त्रय का पालन रूढ़ि के रूप में न करके नाटक के कथा विकास की ज़रूरतों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

11.3.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

किसी भी साहित्यिक कृति की रचना के पीछे रचनाकार की कोई न कोई दृष्टि अवश्य निहित रहती है। कृति की रचना मनोरंजन के लिए भी हो सकती है किंतु मात्र मनोरंजन के अलावा भी कृतिकार का कोई न कोई प्रयोजन या उद्देश्य निहित होता है। एकांकी रचना जिस प्रयोजन या उद्देश्य को लेकर होती है या रचना में जो दृष्टि निहित दिखाई देती है वह उसका प्रतिपाद्य कहलाती है। इस तरह एकांकी के प्रतिपाद्य से तात्पर्य है कि एकांकी क्या संदेश प्रस्तुत करता है और उसके पीछे लेखक का आशय क्या है। प्रतिपाद्य के आधार पर ही कृति का महत्त्व निर्धारित होता है। कोई एकांकी यदि शिल्प की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ है किंतु किसी विशिष्ट रचना दृष्टि को उजागर नहीं करता तो केवल शिल्प के आधार पर वह पाठक या दर्शक को पसंद नहीं आ सकता। इसी

तरह यदि प्रतिपाद्य जीवनानुभवों, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की प्रतिष्ठा नहीं करता या उसमें निहित संदेश अत्यंत निकृष्ट और हीन दृष्टि को स्थापित करता है तो नाटक अच्छा नहीं कहला सकता।

नाटक हो या एकांकी उसमें जीवन से संबंधित कोई न कोई उद्देश्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौजूद रहता है क्योंकि उसकी सामाजिक उपयोगिता के लिए यह आवश्यक है। हाँ यह लेखक के ऊपर है कि वह अपने प्रतिपाद्य को किस तरह प्रस्तुत करता है। वह किसी समस्या को सीधे उभार कर समाधान दर्शक के ऊपर छोड़ सकता है, या फिर समाधान भी प्रस्तुत कर सकता है। ऐतिहासिक रचनाओं में प्रतिपाद्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रश्न इस बात का होता है कि ऐतिहासिक प्रसंग की वर्तमान या भावी प्रासंगिकता क्या है? आधुनिक जीवन में वह किस दृष्टि से उपयोगी है? लेखक उसके माध्यम से क्या संदेश प्रस्तुत करना चाहता है? किसी भी मंचीय प्रस्तुति या श्रव्य-दृश्य माध्यम पर प्रस्तुति के प्रतिपाद्य को जानने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ना या प्रस्तुति को ध्यानपूर्वक देखना जरूरी है। ध्यानपूर्वक देखने या पढ़ने के बाद समझ सकेंगे कि उसमें क्या कहा गया है और लेखक उसके माध्यम से क्या संदेश देना चाहता है। लेखक के संदेश भली-भाँति समझ कर ही हम उसके साहित्यिक और सामाजिक महत्व का मूल्यांकन कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

3. एकांकी और नाटक में क्या अंतर होता है? चार-पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4. निम्नलिखित में से एकांकी में क्या सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है?

- (i) प्रासंगिक कथा
- (ii) कथानक का लक्ष्यों में विभाजन
- (iii) चरम सीमा

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए कोष्ठक में से सही शब्दों को छाँटिए:

- (i) एकांकी में पात्रों की संख्या (का कोई बंधन नहीं है/ काफी होती है/ कम होती है)।
- (ii) एकांकी में लेखक (अपनी ओर से टिप्पणी देता चलता है/ पात्रों के वार्तालाप के साथ-साथ रंग-निर्देश भी प्रस्तुत करता है)।
- (iii) संवाद का एकांकी में (कोई खास महत्व नहीं होता/ बहुत अधिक महत्व होता है)।

6. संकलन-त्रय से आप क्या समझते हैं? इससे क्या लाभ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य विधाएँ : स्वरूप और विकास

11.4 हिंदी एकांकी का विकास

हिंदी में एकांकी एक स्वतंत्र और सशक्त विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। यद्यपि संस्कृत में अंक, वीथी, भाण, प्रहसन, गोष्ठी, रासक, हल्लीश आदि एक अंक के रूपकों (नाटकों) का प्रचलन था किंतु वर्तमान हिंदी एकांकी अपने स्वरूप और तकनीक की दृष्टि से पश्चिम के One Act Play की देन है। पश्चिमी साहित्य में मध्यकाल में धार्मिक विषयों की प्रस्तुति के उद्देश्य से रहस्यपरक नाटक और नीतिपरक नाटक हुआ करते थे जिनकी कथा छोटी और पात्रों की संख्या सीमित होती थी। किंतु इनकी रचना साहित्यिक दृष्टि से न होकर धार्मिक दृष्टि से होती थी। अतः इन्हें साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है। पश्चिम में एकांकी वस्तुतः आधुनिक युग की विधा है जिसका जन्म एक विचित्र घटना के साथ हुआ है। पश्चिम में रंगमंच की बड़ी ही जीवंत परंपरा रही है। नाटक देखना काफी लोकप्रिय मनोरंजन था। किंतु नाटकों का अभिनय देखने के लिए सभी दर्शक अक्सर निश्चित समय पर प्रेक्षागृह नहीं पहुँच पाते थे। किंतु जो लोग समय से पहले या ठीक समय पर पहुँच जाते थे उनके मनोरंजन के लिए अक्सर कोई हास्य प्रधान या रोमांचकारी अभिनय प्रस्तुत किया जाता था। मूल नाटक शुरू होने से पहले प्रवेशिका के रूप में प्रस्तुत ये मनोरंजन प्रदर्शन पटोन्नायक या पटोत्थापक (curtain-raiser) कहलाते थे। आजकल सिनेमाघरों में जिस तरह सिनेमा शुरू होने से पहले कुछ समय समाचार (news reel) और विज्ञापन आदि दिखाए जाते हैं उसी तरह ये पटोन्नायक दिखाए जाते थे। लंदन में वेस्ट एंड थिएटर में सन 1903 में W.W. Jacob की कहानी Monkey's paw का लुई पार्कर द्वारा नाट्य रूपांतर पटोन्नायक के रूप में दिखाया गया। इस पटोन्नायक प्रस्तुति ने दर्शकों को इतना प्रभावित किया कि वे जिस नाटक को देखने आए थे उसे देखे बगैर ही चले गये। इस तरह 'मंकीज़ पॉ' अपनी प्रभावान्विति की सघनता और तीव्रता में पूर्णकालिक नाटक के समकक्ष रहा। इसी घटना से एक नए नाट्य रूप एकांकी (one act play) का जन्म हुआ। नाटक कंपनी के व्यवस्थापकों ने इस घटना को नाटक पर प्रहार माना और आगे से पटोन्नायकों के प्रदर्शन का बहिष्कार किया। इस तरह पटोन्नायकों का प्रदर्शन समाप्त हो गया। किंतु यहीं से एक नई, जीवंत और विशिष्ट नाट्य विधा की शुरुआत हुई। अब एकांकी नाटक केवल हल्के मनोरंजन या रोमांचकारी घटना के प्रदर्शन का माध्यम नहीं रहे बल्कि इनमें बौद्धिकता, तार्किकता तथा नाटकीय सघनता का समावेश हुआ। तब से एकांकी अत्यंत लोकप्रिय नाट्य विधा बन गया।

एकांकी की लोकप्रियता के पीछे इसका प्रभावान्विति के साथ-साथ अन्य बाहरी कारण भी रहे हैं। औद्योगिक विकास के साथ-साथ मनुष्य का जीवन अधिकाधिक व्यस्त हो गया। ऐसी स्थिति में जहाँ वह लंबे उपन्यासों की तुलना में कहानी पढ़ना अधिक पसंद करता, वहीं बड़े नाटकों को स्थान पर थोड़े समय में ही प्रभाव की सघनता से अपील करने वाले एकांकियों को अधिक पसंद करने लगा। घटना व्यापार की एकाग्रता के कारण एकांकी ने जन रुचि को तेजी से प्रभावित किया। बर्नार्ड शॉ, गाल्सवर्दी, इब्सन, कॉकमैन, सिंज, लेसिंग, ऑस्कर वाइल्ड, चेखव, गोर्की, इलियट, सार्त्र, जॉन ड्रिंकवाटर, टॉलस्टाय आदि लेखकों ने इसे समर्थ विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। हिंदी में एक अंक के नाटकों का लेखन भारतेन्दु युग में ही शुरू हो गया था। भारतेन्दु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', बालकृष्ण भट्ट का 'बाल विवाह', प्रताप नारायण मिश्र का 'कलि कौतुक' आदि नाटक समस्या के एक पक्ष को केंद्रित करके लिखे गए हैं। किंतु एकांकी को स्वतंत्र नाट्य विधा मानकर नाट्य लेखन का प्रयास अभी शुरू नहीं हुआ था। अंक और दृश्य आदि शब्दों के प्रयोग में भी एकरूपता नहीं थी। हालाँकि प्रभाव की एकता की दृष्टि से एकांकी विधा के पूर्णतया अनुरूप न होने पर भी ये हिंदी एकांकी

की प्रारंभिक अवस्था के द्योतक माने जाते हैं। सन् 1929 में 'प्रसाद' के 'एक घूँट' का प्रकाशन हुआ। एक अंक और एक ही दृश्य, अंतर्द्वंद्व, इकहरे कथानक आदि के कारण यद्यपि इसे हिंदी का प्रथम एकांकी कहा गया है किंतु आधुनिक एकांकी की शुरुआत 'एक घूँट' से नहीं मानी जा सकती। कार्य-व्यापार की सघनता और क्षिप्रता के अभाव में इसे आधुनिक ढंग का एकांकी मानना उपयुक्त नहीं है।

स्वतंत्र साहित्य विधा के रूप में आधुनिक हिंदी एकांकी की शुरुआत डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'बादल की मृत्यु' (1930) के प्रकाशन के साथ हुई। इसमें वर्मा जी ने पश्चिमी एकांकी की टेकनीक को आधार बनाया है। इसके बाद अन्य एकांकी संकलनों 'दस मिनट', 'नहीं का रहस्य', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'चंपक', 'रेशमी टाई' आदि का प्रकाशन हुआ। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक, हास्यपरक एकांकी लिखे हैं। शिल्प की दृष्टि से पाश्चात्य एकांकी कला को अपनाने के साथ ही कथ्य की दृष्टि से वर्मा जी ने भारतीय आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है, हालाँकि उन्होंने प्राचीन भारतीय जीवन-दृष्टि और नाट्य-दृष्टि का रुढ़िबद्ध होकर पालन नहीं किया है। वे अक्सर पात्रों की चारित्रिक विलक्षणता का स्वाभाविक यथार्थ चित्रण करके अंत में उन्हें आदर्शपरक मोड़ दे देते हैं। पश्चिमी दुखांत और विस्मयजनक अंत को भी उन्होंने अपनाया है। अभिनेयता की दृष्टि से वर्मा जी के एकांकी काफी सफल हैं। स्वयं रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण वे नाट्य प्रस्तुति की अपेक्षाओं को समझते थे। कार्य-व्यापार की सक्रियता, घटनाओं का उतार-चढ़ाव, कुतूहलपूर्ण ढंग से चरम-सीमा की सृष्टि, संकलन-त्रय का निर्वाह, पात्रों के मनोभावों और मनःस्थितियों का सहज विकास, भाषा तथा संवादों की सहजता और संक्षिप्तता आदि उनके एकांकियों की विशेषताएँ हैं। भुवनेश्वर प्रसाद का एकांकी संग्रह "कारवों", 1935 में प्रकाशित हुआ। इनके एकांकियों में सामाजिक जीवन, विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन की विकृतियों, खोखलेपन और कृत्रिमता को उद्घाटित किया गया है। भुवनेश्वर ने जीवन और समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। ऊपरी आदर्श के दिखावे के नीचे छिपे कलुष को वे उघाड़ कर सामने रख देते हैं। उनका व्यंग्य तीखा, कड़वा और प्रत्यक्ष होता है जिससे पाठक या दर्शक तिलमिला उठता है। उन्होंने प्रमुखतया यौन संबंधों, प्रेम विवाह आदि की समस्याओं को उठाया है। वे स्थिति का चित्रण मात्र कर देते हैं। समस्याओं का समाधान देने में उनकी रुचि नहीं है। वे मानते हैं कि समाधान वे ही ढूँढ़ेंगे जो रोगग्रस्त हैं। मनोविश्लेषकों और पश्चिमी नाटककारों — खासतौर पर इब्सन, शॉ, फ्रायड, डी.एच. लारेंस आदि का भुवनेश्वर पर काफी प्रभाव है। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'प्रतिभा का विवाह', 'श्यामा : एक वैवाहिक विडंबना', 'एक साम्यहीन साम्यवादी', 'शैतान' 'ऊसर', 'लॉटरी', 'रोमांच-रोमांच' आदि। 'ताँबे के कीड़े' में भुवनेश्वर ने मनुष्य की धनलोलुपता को नग्न रूप में प्रस्तुत किया है। भुवनेश्वर ने 'सिकंदर', 'अकबर', 'आजादी की नींव' आदि ऐतिहासिक एकांकी भी लिखे हैं।

गणेश प्रसाद द्विवेदी ने भी मनोवैज्ञानिक एकांकी लिखे हैं। 'सोहाग बिंदी', 'वह फिर आई थी', 'परदे का अपर पार्श्व' आदि में असफल प्रेम या असंतुष्ट वैवाहिक जीवन आदि की समस्याओं को उठाया गया है। भाषा के प्रति लेखक की जागरूकता ऐसी है कि 'सोहाग बिंदी' में डॉक्टर, बंगला बोलता है, महाराज देहाती बोली और अन्य पात्र आम बोलचाल की हिंदी। नाटक में लंबे समय का घटना विस्तार है जिसकी सूचना रंग-संकेत के माध्यम से दी गई है।

उदयशंकर भट्ट का पहला एकांकी संग्रह 'अभिनव एकांकी नाटक' 1940 में प्रकाशित हुआ। भट्ट जी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक समस्या प्रधान तथा हास्यपरक एकांकी लिखे हैं। उनके एकांकी समाज के उच्च तथा मध्यवर्गीय जीवन की विषमताओं और विकृतियों पर लिखे गए हैं। सामाजिक समस्याओं के प्रति भट्ट जी का

दृष्टिकोण यथार्थपरक है। विषय के प्रस्तुतीकरण में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता है। उनके एकांकियों में 'स्त्री का हृदय', 'सेठ लाभचंद्र', 'दस हजार', 'एक ही कब्र में', 'बड़े आदमी की मृत्यु', 'नकली और असली', 'सत्य का मंदिर', 'आदिम युग', 'समस्या का अंत' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी के एकांकियों की भाषा सहज और प्रवाहपूर्ण तथा संवाद योजना स्वाभाविक है। शिल्प के संबंध में वे कृत्रिम बंधनों को अस्वीकार करते हैं इसीलिए संकलन-त्रय का बंधन भी नहीं मानते। पाश्चात्य एकांकी शिल्प का प्रभाव उन पर है। पात्रों में अंतर्द्वंद्व की सृष्टि करके वे उन्हें स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाते हैं। अधिकतर एकांकियों की समाप्ति अवसाद में होती है जिसका प्रभाव पाठक या दर्शक पर काफी तीखा और गहरा रहता है। गोविंद वल्लभ पंत ने सामाजिक व्यंग्य प्रधान ऐतिहासिक, पौराणिक एकांकी लिखे हैं। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को नग्न रूप में प्रदर्शित न करके मर्यादित रूप में सामने रखा है। जिज्ञासा और कुतूहल की सृष्टि के साथ कथानक विकास करके वे चरम सीमा पर एकांकी का अंत सुखांत या दुखांत रूप में करते हैं। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'अपराध मेरा है', 'साक्षात्कार', 'काला जादू', 'कपड़े का आदमी', 'पर्दा तोड़ क्लब' आदि।

सेठ गोविंददास ने बड़ी संख्या में एकांकी लिखे हैं। जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, एकपात्रीय आदि एकांकी शामिल हैं। एकपात्रीय एकांकियों में पात्र की आंतरिक गुणधर्मों का विश्लेषण किया गया है। सामाजिक एकांकियों में मध्यवर्गीय तथा उच्चवर्गीय समाज की कमजोरियों और कुरीतियों को प्रस्तुत किया गया है तथा ऐतिहासिक एकांकियों में अतीत की गौरव गाथा है। इनके प्रमुख एकांकियों में 'शाप और वर', 'प्रलय की सृष्टि', 'कंगाल नहीं', 'स्पृद्धा', 'अधिकार लिप्सा', 'वह मरा क्यों' आदि का नाम लिया जा सकता है। इनकी भाषा सरल और सुबोध है, किंतु उसमें संवाद-सौष्ठव प्रायः नहीं है। कथा विकास में जिज्ञासा और कुतूहल का अभाव है। उनके अधिकांश एकांकियों में नाटकीयता का अभाव है। वे संवादात्मक कथा मात्र हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने यथार्थवाद और बुद्धिवाद को अपनाते हुए शाँ और इब्सन का अनुकरण किया है। उन्होंने सामाजिक समस्यामूलक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है। उनके एकांकी तीन संग्रहों में संकलित हैं—'प्रलय के पंख पर', 'अशोक वन' और 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी'। मिश्र जी ने कल्पना और भावुकता का खुल कर विरोध किया है। उनके अधिकांश एकांकियों में पश्चिमी परंपरा का अतिरिक्त खंडन और भारतीय परंपरा का अतिरिक्त आग्रह मिलता है। उनके पात्र इतनी बहस और तर्क-वितर्क में उलझ जाते हैं कि एकांकी संवादात्मक कथा बन कर रह जाता है, उसकी अभिनेयता नष्ट हो जाती है।

उपेंद्रनाथ 'अशक' ने एकांकी लेखन 1937 में शुरू किया। उन्होंने आधुनिक भारतीय जीवन के यथार्थ को, उसके संघर्षों, विकृतियों और उलझाव को बड़ी ही ईमानदारी तथा सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज, खासतौर से मध्यवर्गीय समाज के जीवन को उन्होंने बड़ी ही निकटता से देखा और जाना है। उसकी विसंगतियों को प्रस्तुत करने के लिए तीखे व्यंग्य का सहारा लिया है। संपूर्ण परिस्थिति में निहित व्यंग्य को वे पात्रों के मनोविज्ञान के सूक्ष्म चित्रण द्वारा उभारते हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, सांकेतिक, प्रहसन आदि सभी तरह के एकांकी लिखे हैं। उनके प्रमुख एकांकियों में 'पापी', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'अधिकार का रक्षक', 'मैमूना', 'खिड़की', 'सूखी डाली', 'तौलिए', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'अंधी गली', 'साहब को जुकाम है' 'जोंक' आदि का नाम लिया जा सकता है। वे अधिकतर पारिवारिक जीवन की समस्याओं को उठाते हैं। अक्सर वे दो विरोधी विचारधाराओं के संघर्ष की प्रस्तुति करते हैं। भाषा, संवाद, मंचन और प्रभाव की दृष्टि से उनके अधिकांश एकांकी सफल हैं।

जगदीश चंद्र माथुर ने वर्तमान जीवन की गंभीर और सामान्य समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। उनके अधिकतर एकांकी आधुनिक सामाजिक जीवन पर लिखे गए हैं। जीवन की विषमताओं, पारंपारिक रूढ़ियों तथा आधुनिक नये परिवर्तनों की टकराहट से उत्पन्न जटिलता और संघर्ष को उन्होंने उभारा है। कुछ एकांकियों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लिया गया है। उनके प्रमुख एकांकी हैं 'मेरी बाँसुरी', 'भोर का तारा', 'मकड़ी का जाला', 'कलिंग विजय', 'रीढ़ की हड्डी', 'खंडहर', 'शारदीया', 'भाषण', 'कबूतरखाना'। 'मकड़ी का जाला' में उन्होंने नई शिल्पविधि को अपनाया है। अतीत की घटनाओं तथा अर्द्ध चेतन मनःस्थिति को स्वप्न के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पात्रों के मनोविज्ञान को उभारने में माथुर अक्सर सफल रहते हैं। उनकी भाषा, विषय तथा स्थिति के अनुकूल कहीं कल्पना प्रधान तो कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य प्रधान है। संवाद सीधे, छोटे, बोधगम्य और मर्मस्पर्शी तथा प्रवाहपूर्ण हैं। स्वयं रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण माथुर अपने एकांकियों में रंगमंच के प्रति काफी सजग रहे हैं। उनके रंग-निर्देश पर्याप्त स्पष्ट और उपयोगी होते हैं। पार्श्व संगीत का वे बड़ा ही कलात्मक और प्रतीकात्मक उपयोग करते हैं। जगदीशचंद्र माथुर की एकांकी 'भोर का तारा' का अध्ययन आप इस खंड में करेंगे।

विष्णु प्रभाकर ने रेडियो के लिए लेखन के साथ एकांकी लेखन का आरंभ किया। आदर्श, यथार्थ और स्वाभाविकता का समन्वय करना उनके लेखन की विशेषता है। उन्होंने सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, व्यंग्यात्मक, रेडियो रूपक और बाल एकांकी लिखे हैं। इनमें 'बंधन मुक्त', 'प्रतिशोध', 'रक्त चंदन', 'माँ', 'किरण और कुहासा', 'संस्कार और भावना', 'दो किनारे', 'बीमार', 'शरीर का मोल', 'अशोक', 'झाँसी की रानी', 'सीमा रेखा', 'प्रकाश और परछाई', 'पूर्णाहुति', 'उपचेतना का छल', आदि प्रमुख हैं। पात्रों की मनःस्थिति के चित्रण पर उन्होंने जोर दिया है। आधुनिक जीवन और समाज की आडंबरपूर्ण प्रदर्शन की प्रवृत्तियों को वे व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं तथा पात्रों के स्वभाव के बाहरी आडंबर पर रूढ़िग्रस्तता के पीछे निहित मानवीयता को उजागर करते हैं। गाँधीवाद में आस्था होने के कारण वह पात्रों के हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं। इन एकांकीकारों के अतिरिक्त प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीनारायण लाल, सद्गुरुशरण अवस्थी, चंद्रगुप्त, विद्यालंकार, चतुरसेन शास्त्री, धर्मवीर भारती आदि ने अच्छे एकांकी लिखे हैं। रेडियो एकांकीकारों में रामवृक्ष बेनीपुरी, रेवतीशरण शर्मा, हरिश्चंद्र खन्ना, चिरंजीत, विनोद रस्तोगी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न

7. हिंदी का पहला एकांकीकार कौन है और क्यों?

.....

.....

.....

.....

8. सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए।

- | | |
|--|-----|
| (i) हिंदी में एकांकी एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित है। | () |
| (ii) पूर्णकालिक नाटक का अंग है। | () |
| (iii) संस्कृत नाटकों से आया है। | () |
| (iv) पश्चिम से आया है। | () |

11.5 एकांकी के भेद

एकांकी का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है। विषय वस्तु की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से तथा शिल्प की दृष्टि से। विषय वस्तु की दृष्टि से एकांकी आधुनिक जीवन से संबंधित हो सकते हैं या अतीत के जीवन से संबंधित। इन दोनों में से जीवन के विविध क्षेत्रों में से कोई क्षेत्र चुना जा सकता है जैसे सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, पौराणिक, ऐतिहासिक। शैली की दृष्टि से भी एकांकी के भेद हो सकते हैं जैसे—व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक, हास्यपरक। वर्गीकरण का अन्य आधार है शिल्पविधि—अर्थात् लेखक ने एकांकी के शिल्प की किस विधि को अपनाया है। इस दृष्टि से एकांकी के कई वर्ग हो सकते हैं जैसे :

- क) एक दृश्यीय एकांकी और बहुदृश्यीय एकांकी
- ख) एकपात्रीय एकांकी और बहुपात्रीय एकांकी
- ग) गद्य एकांकी और काव्य एकांकी।

एकपात्रीय एकांकी में सारा कार्य व्यापार एक ही पात्र द्वारा संपन्न होता है। इसलिए इसमें स्वगत भाषण (एकालाप) की पद्धति अपनाई जाती है। सेठ गोविंदास ने कई एकपात्रीय एकांकी लिखे हैं। काव्य एकांकी में पद्य का उपयोग किया है। इसमें काव्यात्मकता तथा गीति-तत्व की प्रधानता होती है।

11.6 रेडियो नाटक

रेडियो नाटक आधुनिक विज्ञान के युग की देन है। समय के साथ-साथ अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते हैं और अभिव्यक्ति माध्यमों में बदलाव से साहित्यिक अभिव्यक्ति में बदलाव आता है। नाटक को दृश्य काव्य अथवा देखने के लिए लिखी गई रचना माना जाता है। किंतु रेडियो के आविष्कार ने नाटक को श्रव्य भी बना दिया। रेडियो नाटक का माध्यम ध्वनि है इसलिए इसे ध्वनि एकांकी या ध्वनि नाटक या ध्वनि रूपक भी कहा जाता है। माध्यम के अनुरूप रेडियो नाटक की शिल्पविधि और टेकनीक भी रंगमंचीय नाटक से कई दृष्टियों से भिन्न होती है। मंच पर प्रदर्शन की कई तरह की ऐसी सीमाएँ होती हैं, जो रेडियो प्रस्तुति में सीमाएँ नहीं रहतीं। ध्वनि प्रभाव द्वारा उनकी सफल प्रस्तुति की जा सकती है। उदाहरण के लिए, गतिशील दृश्यों जैसे रेल, जहाज आदि का चलना, फैंक्ट्री आदि में काम की आवाज, प्रकृति के विविध रूपों, समुद्र की लहरों की आवाज, समुद्री तूफान की आवाज, मेघ, गर्जन, वर्षा, पशु-पक्षियों आदि का पात्र के रूप में प्रवेश आदि आसानी से प्रस्तुत हो सकता है। इसी तरह समय या स्थान का अंतराल यहाँ दिखाया जा सकता है। संकलन-त्रय की यहाँ कोई बंदिश नहीं होती। दृश्य परिवर्तन की यहाँ बड़ी सुविधा होती है। इसके लिए पार्श्व संगीत की सहायता ली जाती है। पुरानी बीती घटनाओं को फ्लैश बैक पद्धति से प्रस्तुत करने की सुविधा भी रेडियो नाटक में होती है। मनोवैज्ञानिक स्थितियों की प्रस्तुति भी रेडियो नाटक में सफलतापूर्वक हो सकती है। स्वगत कथन रंगमंच पर बहुत स्वाभाविक नहीं लगते किंतु श्रव्य रूप में वे काफी स्वाभाविक लग सकते हैं। रेडियो नाटक वस्तुतः संकेत की कला है—कुछ शब्दों, ध्वनि प्रभावों या संगीत के माध्यम से संकेत दे कर श्रोता की कल्पना शक्ति को जगाया जाता है और श्रोता की कल्पना में बिंब या भाव चित्र उपस्थित कर दिया जाता है। विविध स्थितियों और भावों की अभिव्यक्ति के लिए विविध प्रकार का पार्श्व संगीत प्रस्तुत करके सफल प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इस तरह रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक की कई तरह की सीमाओं से मुक्त होता है। वह रंगमंचीय नाटक की तुलना में काफी स्वच्छन्द होता है।

दूसरी ओर रेडियो नाटक के शिल्प की अपनी कुछ विशिष्टताएँ और जटिलताएँ भी होती हैं। शारीरिक, वाणीपरक, भावनात्मक, और दृश्यविधान तथा वेशभूषापरक अभिनय (आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य) में से रेडियो नाटक में वाणी का अभिनय ही प्रमुख होता है। रेडियो नाटक का रंगमंच उसके शब्दों और ध्वनि प्रभावों में ही निहित होता है। पात्रों की रंगमंच पर उपस्थिति, उनके क्रियाकलाप, उनके प्रवेश-प्रस्थान आदि की जानकारी रंगमंच के दर्शक को स्वतः मिलती रहती है किंतु रेडियो पर इन सबकी जानकारी श्रोता को दिलाते रहना पड़ता है। इसी तरह पात्र संख्या यहाँ काफी सीमित होती है। उनके स्वर, लहजे, भाषा, भाव आदि में कई स्तरों पर पृथक्ता अपेक्षित होती है। रेडियो नाटक में वातावरण की सृष्टि ध्वनि-प्रभावों से होती है। दृश्यावली आदि की सुविधा न होने के कारण ध्वनि प्रभावों को जितनी कल्पनाशीलता और इंद्रिय ग्राह्य सूक्ष्मता से अपनाया जाएगा उतने ही वे सफल हो सकेंगे। इसलिए यहाँ विविध प्रकार के संगीत प्रभाव का प्रयोग होता है। संवाद नाटक की आत्मा होते हैं किंतु रेडियो नाटक का आधार वाचिक अभिनय होने के कारण यहाँ संवाद और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भावाभिव्यक्ति का सारा दायित्व भाषा को वहन करना पड़ता है। अतः भाषा जितनी सहज, सुबोध, मार्मिक, प्रभावपूर्ण और संप्रेषणीय होगी नाटक उतना ही सफल होगा। संवाद जितने छोटे, तार्किक, संवेदनशील होंगे उतना ही उनका प्रभाव अधिक होगा।

11.6.1 रेडियो नाटक और एकांकी

प्रश्न यह उठता है कि रेडियो नाटकों को एकांकियों की श्रेणी में रखा जाए अथवा नहीं। रेडियो नाटक अक्सर 10-15 मिनट की अवधि से लेकर एक घंटे तक की अवधि के लिए होते हैं। अंक-संख्या का प्रश्न रेडियो में उठता ही नहीं। आवश्यकता के अनुसार दृश्य होते हैं जिनका परिवर्तन संगीत-ध्वनि के माध्यम से किया जाता है। इसे अंतराल संगीत कहते हैं। कभी-कभी पूरा रेडियो नाटक एक ही दृश्य का भी होता है। कभी-कभी पूर्णकालिक नाटकों या कहानियों और उपन्यासों के रेडियो रूपांतर भी प्रस्तुत किए जाते हैं। इन्हें मंचीय एकांकी की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। रंगमंच और रेडियो कला की दृष्टि से दो अलग चीजें हैं। माध्यम में अंतर होने के कारण दोनों के स्वरूप और संरचना में अंतर होता है। रेडियो नाटक में अंक परिवर्तन आदि की चर्चा नहीं होती इसलिए कुछ विद्वानों ने इन्हें ध्वनि-एकांकी कहा है। प्रश्न यह उठ सकता है कि जब एकांकी और रेडियो नाटक अलग-अलग चीजें हैं तो एकांकी के साथ इनकी चर्चा क्यों की जा रही है। इस संदर्भ में पहली बात तो यह है कि दोनों ही आधुनिक युग में बहुत लोकप्रिय और सशक्त माध्यम सिद्ध हुए हैं। रंगमंचीय एकांकी तथा रेडियो नाटकों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। अधिकतर एकांकीकारों ने दोनों तरह की विधाओं में लेखन किया है, जैसे उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, डॉ. रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर आदि के एकांकी रेडियो पर प्रसारित हुए हैं। दूसरी ओर रेडियो के लिए लिखित नाटकों को दृश्य रूप में परिणत करके एकांकी के रूप में भी प्रकाशित कराया गया है। विष्णु प्रभाकर का 'संस्कार और भावना', रामकुमार वर्मा का 'कौमुदी महोत्सव' ऐसे ही एकांकी हैं। हिंदी में प्रकाशित नाट्य-साहित्य में एकांकी नाटक और रेडियो नाटक का स्पष्ट भेद नहीं हुआ है। अतः हिंदी एकांकी का विवेचन रेडियो नाटक पर विचार किये बगैर पूरा नहीं होता।

11.6.2 रेडियो नाटक के प्रकार

रेडियो पर होने वाली नाट्य प्रस्तुतियों के कई रूप देखने में आते हैं। इनमें प्रमुख हैं-रेडियो नाटक, रेडियो रूपक, रेडियो रूपांतर, संगीत रूपक, प्रहसन, झलकी, रेडियो फीचर, मोनोलॉग आदि। ये भेद शिल्प की दृष्टि से हैं। विषय की दृष्टि से भी भेद हो सकते हैं। जैसे-सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, हास्यपरक, व्यंग्य प्रधान आदि।

प्रमुख रेडियो नाटककारों में कृष्णचंद्र, चंद्रकिशोर जैन, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, रेवतीशरन शर्मा, हरिशचंद्र खन्ना, प्रभाकर माचवे, चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, विश्वंभर मानव, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, भगवतशरण उपाध्याय, हंसकुमार तिवारी, सत्येंद्र शरद आदि का नाम लिया जा सकता है।

बोध प्रश्न

9. एकांकी में भेद किस-किस आधार पर किए जा सकते हैं।

.....
.....

10. रेडियो नाटक तथा एकांकी में क्या अंतर है?

.....
.....
.....

11.7 कथा मंचन और कहानी का रंगमंच

पिछले करीब दो-ढाई दशकों से यानी अस्सी के दशक से कथा साहित्य— कहानी और उपन्यास— की नाट्य प्रस्तुति हिंदी रंगमंच की एक महत्वपूर्ण गतिविधि रही है। इस दिशा में दो तरह की स्थितियाँ रही हैं — (1) किसी रचना यानी उपन्यास या कहानी का नाट्य रूपांतरण कर उसकी मंचीय प्रस्तुति की जाती है। (2) रचना में कोई परिवर्तन किए बगैर उसको यथावत रूप में ही मंच प्रस्तुति की जाती है। विष्णु प्रभाकर द्वारा 'गोदान' का 'होरी' नाम से नाट्य रूपांतर अथवा मन्नू भंडारी का अपने उपन्यास 'महाभोज' का स्वयं नाट्य रूपांतर पहली श्रेणी में आते हैं जबकि निर्मल वर्मा की कहानियाँ — 'तीन एकांत' का मंचन दूसरी श्रेणी में। दोनों ही प्रकार की प्रस्तुतियाँ हिंदी रंगमंच की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं।

वैसे कथा मंचन पुराने समय से हमारी नाट्य परंपरा का अंग रहा है 'रासलीला' 'आंकिया नाट' 'यक्षगान' 'कथकली' आदि लोक नाट्य रूपों में रामकथा या कृष्णकथा का कोई एक अंश एक बार में प्रस्तुत किया जाता है। फिल्मों के आ जाने के बाद अनेक कहानियों, उपन्यासों, लोक कथाओं को दृश्य रूप प्रदान किया जाता रहा है और टेलीविज़न ने पुनः इस दृश्यात्मक रूपांतर को विस्तार दिया है। किंतु आज कथामंचन अपने आप में एक सशक्त नाट्य-शैली के रूप में खड़ा है। उपन्यास और कहानी का नाट्य रूपांतर और उसकी यथावत मंचीय प्रस्तुति की प्रक्रिया दोनों ही स्थिति में उसका माध्यम बदलता है। यह बदलाव न केवल लेखकीय पक्ष अथवा प्रस्तोता के पक्ष की दृष्टि बल्कि गृहीता के पक्ष की दृष्टि से भी होता है। जिस तरह रेडियो नाटक के जन्म से नाटक देखने की बजाय सुनने की चीज़ हो गया और नाट्य प्रस्तुति में ध्वनि पक्ष ही प्रमुख हो गया उसी तरह उपन्यास और कहानियाँ पढ़ी नहीं देखी जाती हैं। नाट्य रूपांतर के माध्यम से वे सजीव होकर साकार दिखाई देती हैं विवरण की जगह सक्रियता ले ली जाती है। पाठक की दर्शक में बदलने की इस प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ होती है कथा में निहित नाटकीयता की तलाश; अर्थात् स्थितियों, घटनाओं, भावाभिव्यक्तियों, मनः स्थितियों के उन बिंदुओं और पहलुओं की तलाश जो दर्शक के सामने प्रत्यक्ष होकर उसे प्रभावित कर सकें। कथा मंचन की इस पूरी प्रक्रिया में रूपांतरकार, निर्देशक और अभिनेतागण की पूरी-पूरी साझीदारी होती है। दोनों या

तीनों मिलकर प्रस्तुति को संभव और सफल बनाते हैं। मन्नू भंडारी का 'महाभोज' भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बाजार में', प्रेमचंद के 'गोदान' 'रंगभूमि' और अनेक कहानियाँ, हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट' की आत्मकथा, मनोहर श्याम जोशी का 'कुरु-कुरु स्वाहा', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', श्री लाल शुक्ल का 'रागदरबारी', अमृत लाल नागर का 'सुहाग के नूपुर' आदि अनेक उपन्यासों की नाट्य रूपांतर प्रस्तुतियों ने हिन्दी रंगमंच को वैविध्यपरक बनाया। तभी रंगमंच की दुनिया में एक नई घटना घटी। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक देवेंद्र राज अंकुर ने कहानी में कोई भी हेर फेर किए बगैर उसकी यथावत् रंग प्रस्तुति कर हिन्दी रंगमंच को नया आयाम दिया। कहानी के विवरणात्मक अंशों के लिए नैरेटर का बहुत सशक्त इस्तेमाल करते हुए दृश्य बिम्बों के माध्यम से कहानी को साकार करते हुए 'कहानी का रंगमंच' नामक नई प्रस्तुति शैली विकसित की। छात्र अभिनेताओं से कथा में निहित दृश्यात्मकता को, नाटकीयता को तलाशने और अपने अभिनय द्वारा रूपायित करने की एक सशक्त पद्धति के माध्यम से उन्होंने प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, फणीश्वरनाथ रेणु, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, गोविंद मिश्र आदि अनेक कहानीकारों की कहानियाँ सजीव घटना के रूप में दर्शक तक पहुँचीं, तो रंगमंच की उर्वरता की नयी संभावनाएँ प्रकट हुईं और पठित साहित्य से रंगमंच के रिश्ते के नए पहलू उजागर हुए। कथा मंचन ने यह सिद्ध कर दिया कि नाटक के लिए अब तक अनिवार्य माने जाने वाले पात्रों की बातचीत और कार्यव्यापार के अलावा और भी कुछ है जो रचना को दृश्यात्मक रूप में सफल और सजीव बना सकता है। संवादों की अनिवार्यता के अलावा वर्णन अथवा नैरेशन (वर्णन) भी अभिनय का एक रूप हो सकता है यह बात स्थापित हुई। कहानी के रंगमंच ने वस्तुतः कई तरह के रूढ़ विश्वासों से हिन्दी रंगमंच को मुक्त किया। एक तरफ तो मंचसज्जा के बहुत से तामझाम से हटकर अभिनेता के शरीर को केंद्र में स्थापित किया और अभिनय, मुख-मुद्राओं, शारीरिक चेष्टाओं से उत्पन्न गति, लय और अभिव्यक्ति से वह सब कुछ प्रस्तुत कर दिया जिसे अन्य साधनों से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता था। दूसरी तरफ नाटक को अन्य सभी साहित्यिक विधाओं – कथा साहित्य, कविता, आलेख, जीवनी से जीवंत संवाद की स्थिति में ला दिया।

विविध साहित्यिक विधाओं का मंचन :

मंचन की प्रविधि, शैली और स्वरूप में पिछले कुछ दशकों से जो नया बदलाव आया है उसने हर सृजनात्मक विधा में मौजूद दृश्य तत्व को उद्घाटित करने में अद्भुत सफलता पाई है। कहना चाहिए कि सर्जनात्मकता के भीतर नाट्यात्मकता की तलाश करते हुए कविता, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण सभी को बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से मंचित कर दर्शक को रचना के भीतर प्रवेश पाना सुगम बना दिया है। एक समय था जब यह खोजा जाता था कि किसी नाटक में मंचीयता के तत्व मौजूद हैं या नहीं और कहा जाता था कि हिन्दी में अभिनय नाटकों की घोर कमी है। नाटक क्लासिक श्रेणी के तो हैं किंतु पठनीय हैं मंचीय नहीं। किंतु जब देवेंद्रराज अंकुर, राजिन्दरनाथ तथा अन्य निर्देशकों ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली के छात्रों को विभिन्न साहित्यिक रचनाओं में कोई भी पंक्ति बदले बगैर ज्यों की त्यों दृश्य रूप में उतार देने की कला में प्रवीण किया तो दृश्य माध्यमों की दुनिया ही बदल गई। कहानी शिवप्रसाद सिंह की हो या निर्मल वर्मा की, प्रेमचंद की हो या प्रसाद की, जैनेंद्र की हो या रवीन्द्रनाथ की, मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' हो या रमेशचन्द्र शाह की कविता, 'त्याग-पत्र' उपन्यास हो या 'बाणभट्ट की आत्मकथा', इनका नाट्य रूपांतर किए बगैर रचना को ज्यों का त्यों मंचन कर जीवंत बनाने की इस कला ने सिनेमा, टी.वी. पर उपन्यासों की प्रस्तुति को पीछे छोड़ दिया। इस शैली ने कथावाचन यानी किस्सागो से स्वर के उतार-चढ़ाव-लहजे द्वारा दर्शकों की कल्पना में बिम्ब जगाना सीखा और उसका सशक्त जीवंत प्रयोग

मंचीय प्रस्तुतियों के साथ किया। रचनाओं में मौजूद संवादों का पात्रों द्वारा और शेष विवरण को वाचक द्वारा प्रस्तुत कराते हुए पाठ्य को दृश्य बनाने का यह विधान मुख्यतः देहभाषा, प्रकाश व्यवस्था और ध्वनि प्रभावों पर केन्द्रित होता है। दृश्य सज्जा और स्टेज प्रॉपर्टी लगभग नहीं के बराबर या प्रतीकात्मक या न्यूनतम होती है। आंगिक, वाचिक, सात्विक अभिनय विधान से लिखित शब्द को जीवंत बनाते हुए संप्रेषण व्यापार सफल बनाया जाता है।

11.8 नुक्कड़ नाटक

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि नुक्कड़ नाटक के लिए किसी खास रंगमंच या ऑडिटोरियम की जरूरत नहीं। यह गली-मोहल्ले के नुक्कड़, सड़क, चौराहे कहीं पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। नुक्कड़ नाटक शब्द को अंग्रेजी के स्ट्रीट-प्ले का हिंदी पर्याय मात्र न समझना चाहिए क्योंकि हमारी लोक नाट्य परंपरा भवई, तमाशा, नौटंकी, भाँड़, बहरूपिया आदि ही नहीं यहाँ तक कि रामलीला और रासलीला की प्रस्तुतियाँ भी अक्सर गली-मोहल्ले के नुक्कड़ या चौक में होती रही हैं। हालाँकि आज हम जिसे नुक्कड़ नाटक नाम से जानते हैं वह पिछली शताब्दी के छठे-सातवें दशकों में एक विशेष रंग-आंदोलन के रूप में उभरा। स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार और मोहभंग स्थितियों से पैदा आक्रोश और अवसाद के कारण सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन बदलाव की चेतना जगाने के माध्यम के रूप में नुक्कड़ नाटक का आरंभ हुआ। 'जन नाट्य मंच' की तरह एक जन आंदोलन के रूप में नुक्कड़ नाटक हमारे सामने आया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' हिंदी का पहला नुक्कड़ नाटक माना जाता है। राजनेता, अफसर, पुलिस और दबंग वर्ग सभी मिल कर कितनी सरलता से गरीब आदमी का शोषण करके, बिना किसी अपराध बोध या नैतिक पश्चाताप के पनपते जाते हैं। इस तथ्य को गांधी जी की बकरी के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले इस नाटक को बिना किसी मंचीय सज्जा अथवा औपचारिकता के इतनी ज्यादा सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया कि यह अपने आप में एक मिसाल बन गया। इसकी अनेकानेक प्रस्तुतियों की लोकप्रियता ने जागरूकता और जन शिक्षा में नाटक की अहम् भूमिका को स्वतः सिद्ध कर दिया। अपने समय की माँग के रूप में उभरे नुक्कड़ नाटक ने नाटक और रंगमंच के पारंपरिक ढाँचे को, मान्य रूढ़ियों और अवधारणाओं को तोड़ते हुए एक रंग-क्रांति उत्पन्न कर दी जिसके चलते इसे एक अलग नाट्य रूप की पहचान मिली। पूरे देश में नुक्कड़ मंच और उसकी संस्थाएँ तेजी से उभरीं और आशु नाटक के रूप में नुक्कड़ नाटक ने जन जीवन की ज्वलंत समस्याओं, आम आदमी के साथ हो रहे अन्याय और छल प्रपंच को उघाड़ते हुए हमें उन पर सोचने और समाधान खोजने को मजबूर कर दिया। भूख, गरीबी, मजदूरों का शोषण, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, दहेज, बेरोजगारी, स्त्री-शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य, दलितों पर अत्याचार आदि हमारे सामने के ज्वलंत प्रश्नों पर तात्कालिक रूप से तैयार किए गए छोटे छोटे नाटकों ने सामाजिक जागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रगतिशील नाटक संगठन इष्टा (भारतीय जन नाट्य संघ) और अन्य जनवादी नाट्य समूहों ने भी नुक्कड़ मंच को सफल और सशक्त बनाने में अहम् भूमिका निभायी। नुक्कड़ नाटक की विशेषता यह है कि यह हर तरह से लचीला नाट्य रूप है। इसकी लिखित स्क्रिप्ट होना जरूरी नहीं, पात्र को अपनी भूमिका जाननी है उसे प्रस्तुत करने के लिए जरूरत पड़ने पर वह संवादों में अपने ढंग से थोड़ी बहुत हेर-फेर कर सकता है लेकिन कथ्य का नितांत यथार्थ होना जरूरी है; इतना यथार्थ कि देखने वालों को लगे कि बिना किसी औपचारिकता के एक असलियत का सामना कर रहे हैं एक ऐसी

असलियत जो उन्हें चुभती रही है और जिसमें परिवर्तन की जरूरत वे महसूस कर रहे हैं। घंटे-आधा घंटे में जानी-पहचानी स्थितियों, घटनाओं के किसी पक्ष विशेष को बोलचाल की भाषा की तल्खी और प्रखरता के साथ, प्रस्तुत करने वाले नुक्कड़ नाटक के कलाकार प्रस्तुति से पहले दर्शक वर्ग का अंग होते हैं और प्रस्तुति के बाद भी। प्रस्तुति के समय वे दर्शकों की भीड़ के बीच में अभिनय करते हैं यानी चारों ओर दायरा बना कर खड़े दर्शकों के लिए उन्हें प्रस्तुति करनी होती है जबकि रंगमंच के अभिनेता केवल अपने सामने बैठे दर्शकों के लिए अभिनय करते हैं। अभिनेताओं की गति, समूहन और संचालन से उन सबको यह बोध कराना होता है कि अभिनय उनके सामने हो रहा है। दर्शक और अभिनेता के बीच यहाँ दूरी नहीं होती जबकि मंच पर होने वाली प्रस्तुतियों में दोनों के बीच औपचारिक दूरी तो होती ही है। प्रकाश-व्यवस्था के माध्यम से यह दूरी और अधिक प्रतीत कराई जाती है। प्रेक्षागृह में रंगमंच पर जरूरत के अनुसार अधिक प्रकाश, मध्यम प्रकाश अथवा अँधेरा रखा जाता है; प्रकाश को घटाया, बढ़ाया जाता है और दर्शक दीर्घा में बहुत मंद रोशनी कभी-कभी मंच के किसी हिस्से विशेष पर प्रकाश रखते हुए अन्य हिस्सों को अँधेरे में रखा जाता है। लेकिन नुक्कड़ नाटक में इसकी जरूरत नहीं। नुक्कड़ नाटक एक प्रभावपूर्ण नाट्य रूप है। इसे प्रस्तुत करने वाले सामाजिक जागरूकता और सुधार के लिए उपयुक्त विषय चुनकर नाट्य प्रस्तुति करते हैं। जरूरी नहीं कि ये सभी नाटक छपे हों। रंग-सज्जा, पात्रों की विशेष वेश-भूषा आदि की कमी नुक्कड़ नाटक में गुंजाइश ही नहीं होती।

नुक्कड़ नाटक के क्षेत्र में सफदर हाशमी, माला हाशमी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सफदर हाशमी ने 1973 में दिल्ली में जन नाट्य मंच (जनम) की शुरुआत की जिसके माध्यम से 'बकरी', 'भारत भाग्य विधाता' जैसे नाटक प्रस्तुत किए जो अपने लचीलेपन के कारण गली मोहल्ले-चौराहे के अलावा प्रेक्षागृह में भी सफल और प्रभावकारी थे। फिर जन-नाट्य मंच ने सामूहिक रूप से नुक्कड़ नाटक तैयार करके प्रस्तुत करने का सिलसिला शुरू किया और उसे अन्य पात्रों के सहयोग से प्रस्तुत किया। हर अभिनेता अपनी भूमिका स्वयं रचता है। 1978 में इस प्रक्रिया में तैयार 'मशीन' नुक्कड़ नाटक सफदर हाशमी के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया। यह नाटक काफी प्रसिद्ध हुआ। नुक्कड़ नाटक आंदोलन का देश भर में विस्तार हुआ है। जनम द्वारा प्रस्तुत नुक्कड़ नाटकों में 'मशीन', 'औरत', 'हल्ला बोल', 'नई बिरादरी', 'मुझे बोलने दो' आदि का नाम लिया जा सकता है।

अपनी सारी विशिष्टता और प्रभावपूर्णता के बावजूद नुक्कड़ नाटक ठहराव का शिकार हुआ। इसकी विषयगत और प्रस्तुतिगत पुनरावृत्तियों ने एकरसता पैदा की। वही कथा, वैसी ही प्रस्तुति, वही पुलिस दरोगा, हत्यारा, जल्लाद, नेता, मंत्री, जमींदार, मिल मालिक, स्त्री, किसान मजदूर एक तरह की रूढ़ नाट्य संरचना में आते रहे। मदारी-जमूरे के रूपक में नारेबाजी, प्रचार और जुलूस एक सतही समसामयिकता से आगे मानवीय संवेदना तक नहीं पहुँच सके। इसी बीच भूमंडलीकरण के दौर में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक बदलाव ने नुक्कड़ नाटक की जनाक्रोश और व्यवस्था विरोधी शक्ति में सेंध लगाई। शासन-तंत्र, मीडिया तथा बाजार ने उसे अपने उपयोग के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया। फिर भी आस्थावान प्रयासरत वर्ग इसे सामाजिक जागरण के उद्देश्य से सक्रिय रखे हुए हैं।

11.9 नाट्य-रूपांतर

पिछले भाग में कथा मंचन के विषय में पढ़ते समय आपने देखा कि कहानी और उपन्यास की मंच प्रस्तुति दो तरह से होती है – (1) रचना को यथावत मंचित करके (2) उसका नाट्य-रूपांतर करके। नाट्य-रूपांतर की प्रक्रिया में उसके विवरणों को

अलग निकाल दिया जाता है। उनके स्थान पर अपेक्षित संवादों द्वारा सूचना को दृश्य बनाया जाता है। कथा की समयगत और स्थानगत दूरी को भी नाटकीय युक्तियों द्वारा दृश्य-सूच्य बनाया जाता है। इस तरह रचना को एक विधा से दूसरी विधा में ढाल दिया जाता है। नाट्य-रूपांतर की प्रक्रिया एक तकनीकी प्रक्रिया है जो रूपांतरकार से नाटकीयता और दृश्यात्मकता की सूझबूझ की अपेक्षा रखती है। कहानियों, उपन्यासों के अलावा कविता, आलेख, संस्मरण, जीवनी आदि की भी नाट्य प्रस्तुतियाँ होने लगी हैं। मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में', श्रीकांत वर्मा की 'मगध', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'कुआनो नदी', भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' आदि की प्रस्तुतियों ने हिंदी रंगमंच को नई दिशा दी है। इसके अलावा किसी रचनाकार की सुप्रसिद्ध रचनाओं अथवा महापुरुष के सुप्रसिद्ध जीवन प्रसंगों के अंशों से कथ्य जोड़ते हुए आलेख तैयार कर एकल अभिनय ने रंग प्रस्तुति को नया आयाम दिया है। निराला की जन्मशती के अवसर पर निराला के जीवन प्रसंगों और उनकी रचनाओं को संबद्ध करते हुए 'महाप्राण निराला' की प्रस्तुति एक अभूतपूर्व अनुभव बन गई थी।

बोध प्रश्न

- हिंदी के सात प्रमुख एकांकीकारों के नाम बताइए।

.....

.....

अभ्यास

- भुवनेश्वर के एकांकियों की क्या विशेषताएँ हैं? लगभग चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

- कहानी के रंगमंच से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

- नुक्कड़ नाटक पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

11.10 सारांश

इस इकाई में आपने हिंदी एकांकी के स्वरूप और विकास के बारे में पढ़ा है। अब आप साहित्य की दृश्य विधा के विशिष्ट स्वरूप के बारे में जानते हैं। नाटक और एकांकी के संबंध और दोनों के बीच अंतर की जानकारी भी आपको मिल गई है। अब आप एकांकी के रचनागत वैशिष्ट्य की चर्चा कर सकते हैं तथा हिंदी एकांकी के विकास के बारे में भी बता सकते हैं। एकांकी के विभिन्न भेदों के बारे में भी आपने पढ़ा है और रेडियो

नाटक की सशक्त विधा से भी आपका परिचय हो गया है। इसके संरचनागत वैशिष्ट्य को भी आप अच्छी तरह पहचान गए हैं।

हिंदी एकांकी और अन्य दृश्य
विधाएँ : स्वरूप और विकास

11.11 शब्दावली

निर्देशक	: नाटक की प्रस्तुति कराने वाला व्यक्ति, जो अभिनेताओं तथा अन्य प्रस्तुति, सहयोगियों को दिशा-निर्देश देता है तथा पूरी व्यवस्था देखता है।
रंग सज्जाकार	: नाटक में रंगमंच की सजावट करने वाला व्यक्ति।
कार्यावस्थाएँ	: संस्कृत नाटक में कार्य व्यापार के विकास का पाँच अवस्थाओं की चर्चा की गई है—आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।
संधियाँ	: संस्कृत नाटक में कार्यावस्थाओं का अर्थ प्रकृतियों से जोड़ने के लिए संधियाँ होती थीं।
अर्थ प्रकृतियाँ	: फल प्राप्ति के उद्देश्य से किए गए कार्य की दृष्टि से कथावस्तु को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है—बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य।
अपरिहार्य	: अनिवार्य, अवश्यंभावी।
रंग निर्देश	: नाटक की प्रस्तुति की दृष्टि से लेखक द्वारा दिए गए स्थान, समय, मंच-सज्जा, पात्रों की वेशभूषा, आवागमन आदि के संबंध में निर्देश।
प्रभावान्विति	: प्रभाव की एकता।
प्रेक्षागृह	: नाट्यशाला, थियेटर।
नाटकीयता	: नाट्य प्रस्तुति के रूप में प्रभावपूर्ण होने की क्षमता।
आडंबर	: अनावश्यक दिखावा।
एकालाप	: एक ही पात्र का लंबा भाषण।
किस्सागो	: कहानी सुनाने वाला।

11.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1. नाटक एक दृश्य माध्यम है जिसकी प्रस्तुति अभिनय के द्वारा होती है जबकि कहानी और उपन्यास का आस्वादन पढ़कर या सुनकर लिया जाता है।
2. i) अभिनेता, ii) रंगमंच, iii) नाटक, iv) दर्शक
3. देखें भाग 11.3
4. iii)
5. i) कम होती है,
ii) पात्रों के वार्तालाप के साथ-साथ रंग निर्देश भी प्रस्तुत करता है।
iii) बहुत अधिक महत्त्व होता है।
6. देखें भाग 11.3.1 का संकलन-त्रय अंश।

7. वैसे तो हिन्दी में एक अंक के नाटक भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद ने भी लिखे, लेकिन पश्चिम एकांकी तकनीक की तरह का पहला एकांकी नाटक रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' है जिसका रचना काल 1930 है।

8. i) (✓) ii) (×) iii) (×) iv) (✓)

9. देखें भाग 11.5

10. देखें भाग 11.6.1

11. देखें भाग 11.4

अभ्यास

1. देखें भाग 11.4

2. देखें भाग 11.7

3. देखें भाग 11.8



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY